

योग दर्शन में ध्यान का हमारे जीवन में प्रभाव: एक व्याकरणिक एवं दार्शनिक अनुशीलन

डॉ. कीर्ति कुमार त्रिपाठी¹, खगेश कुमार राजवाड़े²

निर्देशक-सहायक प्राध्यापक-संस्कृत, यमुना प्रसाद शास्त्री, महाविद्यालय, सिरमौर (म.प्र.)¹

शोधार्थी-शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)²

सारांश:

योग एक कला को अभिव्यक्त करता है। योग के माध्यम से मनुष्य के भीतर निहित कला प्रकट होती है। योग को योग-अनुशासन का आधारभूत स्तंभ माना गया है। समाधि वह साधन है जो चित्त की समस्त अवस्थाओं को धारण करती है। सत्य की अनुभूति के लिए योग का अभ्यास अनिवार्य है। योग-दर्शन की उपयोगिता वैदिक तथा अवैदिक दोनों परंपराओं में स्वीकार की गई है। 'योग' शब्द का अर्थ है जीवात्मा ('जीवात्मा') का परमात्मा (ईश्वर, 'परमात्मा' के साथ मिलन। योग के द्वारा योगी अत्यंत बड़े और अत्यंत पीड़ादायक दुःखों से भी विचलित नहीं होते। जिस प्रकार मनुष्य पहले अपने मन में किसी वस्तु की कल्पना करता है और फिर उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। उसी प्रकार उस प्रक्रिया में योग का अत्यधिक महत्व है। इसका परिणाम आध्यात्मिक शक्ति है। आध्यात्मिक शक्ति के विकास से मनुष्य अनेक कठिनाइयों का सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। योग का अभ्यास पूर्णतः आध्यात्मिक चिन्तन पर आधारित है। उसी प्रकार से योग दर्शन में ध्यान के विषय की ओर चित्तवृत्तियों का निरंतर, प्रवाह 'ध्यान' कहलाता है। यह निरंतरता जलधारा की भाँति प्रवाहित होती है। यह अविच्छिन्न रहती है क्योंकि मन सांसारिक इच्छाओं से पूर्णतः मुक्त होता है। अंततः जब चित्तवृत्तियाँ बाहर की ओर प्रवृत्त नहीं होतीं, तब मन की अंतर्मुखी और एकाग्र प्रवृत्ति ध्यान के लिए अत्यंत आवश्यक हो जाती है। किंतु कला का अपना स्वतंत्र स्वरूप है। व्याकरणिक एवं दार्शनिक दृष्टि से मानव-अभिव्यक्ति में ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान है। जबकि योग मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अनुभव का आंतरिकीकरण करने का साधन है।

मुख्य शब्द: जीवात्मा, परमात्मा, ध्यान, एकाग्र, ध्यान, मानसिक, इष्टदेव आदि।

शोध प्रविधि

इस शोध पत्र में विषय योग दर्शन में ध्यान का हमारे जीवन में प्रभाव: एक व्याकरणिक एवं दार्शनिक अनुशीलन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आधार पर अध्ययन किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में साक्षात्कार, विद्वानों का मार्गदर्शन एवं द्वितीयक स्रोत के रूप में पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अध्ययन किया गया है।

समस्या

ध्यान एक विशेष प्रकार के मन के लिए उपयुक्त होता है। उसका स्वरूप मानव-अभिव्यक्ति के साधनों तथा व्यक्तिगत रुचियों पर निर्भर करता है। मनुष्य के स्वभाव और क्षमताओं के अनुसार उसके मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं। कुछ विचारों के प्रवाह में अनैतिक विचार भी आते हैं। फिर वह उन विचारों पर मनन करता है कि ऐसा विचार कैसे उत्पन्न हुआ। उसी समय ज्ञानी पुरुष आत्मा का ध्यान करता है। जो भी व्यक्ति के लिए उपयुक्त होता है, मन उसी वस्तु का स्वरूप धारण कर लेता है जिस पर वह केंद्रित होता है। इसके माध्यम से मनुष्य जीवन और संसार की समस्त समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करता है। प्रत्येक नागरिक को मानव-आचरण पर आधारित सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करना चाहिए। विशेषकर सामाजिक विरोधाभासों के सामने, जो आज भी समाज के लिए निराशाजनक उदाहरण बने हुए हैं।

उद्देश्य

आध्यात्मिक साधक अपने इष्टदेव ('इष्ट') का ध्यान करता है। मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अपने कर्मों का चिंतन करता है। हठयोग का साधक अपने इष्टदेव का ध्यान करता है। भगवद्गीता में वर्णित है। वासुदेवः सर्वमिति, अर्थात् सब कुछ वास्तव में वासुदेव ही है। साधक इस सत्य का अनुभव करता है। ज्ञानी अथवा वेदान्ती सर्वत्र केवल आत्मा का ही दर्शन करता है। नाम और रूप के कारण यह दृष्टि लुप्त हो जाती है। उपनिषद् कहते हैं। सर्व खल्विदं ब्रह्म (यह समस्त जगत् वास्तव में ब्रह्म ही है। साधक अनुभव करता है कि संपूर्ण विश्व वास्तव में ब्रह्म है। मानव जीवन गुणों और कर्मों से निर्धारित होता है।

समाधान

नैतिक आचरण के संदर्भ में महर्षि पतंजलि नैतिक सिद्धांतों की चर्चा करते हैं। आध्यात्मिक साधना के माध्यम से मानव-आचरण शुद्ध होता है। नैतिक व्यवहार के आधार के रूप में वे अहिंसा ('अहिंसा'), सत्य ('सत्य'), अस्तेय ('अस्तेय'), ब्रह्मचर्य ('ब्रह्मचर्य') और अपरिग्रह ('अपरिग्रह') का वर्णन करते हैं। वास्तव में योग-अनुशासन नैतिक मूल्यों के विकास के लिए अत्यंत उपयोगी है। ध्यान व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करता है।¹¹ क्रियायोग वास्तव में निरंतर प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार समाज में उत्पन्न होने वाली विसंगतियों का समाधान मानवीय मूल्यों के माध्यम से किया जा सकता है। सगुण ध्यान और निर्गुण ध्यान। सगुण ध्यान में साधक भगवान कृष्ण, राम, शिव, गायत्री, हरि आदि के स्वरूप का ध्यान करता है। निर्गुण ध्यान में साधक समस्त मानसिक शक्ति को ईश्वर-प्रदत्त मानकर उसे आत्मा पर केंद्रित करता है। इससे स्मृति और अन्य विचारों से तुलना नहीं होती और एक ही प्रकार का विचार संपूर्ण मन को भर देता है। जब साधक खुली आँखों से भगवान कृष्ण का दर्शन करता है और उनका ध्यान प्रारंभ करता है, तो यह सगुण ध्यान कहलाता है।¹² जब साधक बंद आँखों से भगवान कृष्ण की छवि का अनुभव करता है, तब भी यह सगुण ध्यान ही माना जाता है, यद्यपि उसमें निर्गुण ध्यान की प्रधानता अपेक्षाकृत अधिक होती है। जब साधक अंतःस्थित निराकार प्रकाश का ध्यान करता है, तब वह मुख्यतः निर्गुण ध्यान होता है। पूर्वकाल में ध्यान के दोनों रूपों को निर्गुण से संबंधित माना जाता था। निर्गुण ध्यान में भी मन को एकाग्र करने से पहले स्थूल रूप आवश्यक होता है। बाद में वह रूप लुप्त हो जाता है, और जब ध्यान करने वाला तथा ध्यान का विषय एक हो जाते हैं, तब साधक ध्यान की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त करता है। सगुण ध्यान का अर्थ है मूर्ति अथवा ईश्वर के साकार स्वरूप का ध्यान। स्वभाव से भक्तिपरायण व्यक्तियों के लिए यही सगुण ध्यान है। ऐसे लोग मूर्ति-पूजा के माध्यम से ध्यान करना चाहते हैं। वे ईश्वर के गुणों का ध्यान करना और दिव्य नाम का जप करना चाहते हैं। इन गुणों में सर्वव्यापकता भी सम्मिलित है। ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वव्यापी हैं। इसलिए कहा गया है कि सच्चे साधक का मन पवित्रता से परिपूर्ण होता है। हृदय-कमल में ईश्वर की स्थापना करनी चाहिए। इस विधि का बार-बार अभ्यास किया जाना चाहिए। सच्चे साधक के लिए ध्यान का अत्यंत महत्व है। जो पुरुष परम सत्य के रहस्य को जानता है, वह उसी तत्व की खोज करता है जिसकी प्राप्ति के लिए ब्रह्मा और देवताओं ने असंख्य वर्षों तक तप किया। तप का फल ही तप का प्रमाण है। दिव्य वर्षों की दीर्घ अवधि के पश्चात् भगवान विष्णु कठोर और तीव्र तप से प्रसन्न होकर प्रकट होते हैं। साधक प्रार्थना करता है।¹³ हमें परम सत्य का रहस्य बताइए। केवल आप ही सर्वज्ञ और अंतःकरण के ज्ञाता हैं। समस्त शक्ति आपमें ही स्थित है। इन सभी कर्मों के फल से जीवन-कला ही समाज में व्यक्तिगत जीवन का मानदंड बनती है, और उसी से जीवन का सार प्रकट होता है। ज्ञानस्वरूप प्रज्ञा के रूप में केवल आप ही ज्ञान कहलाते हैं। अतः समाज में घटित होने वाली समस्त घटनाओं के एकमात्र साक्षी परमपिता परमेश्वर ही हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ, केवल आप ही उनके सृष्टा और पालनकर्ता हैं।

इस कथन के अनुसार वृत्तिमात्रेण शब्द का प्रयोग ध्यान के विषय के रूप और गुणों की कल्पना का निषेध करने के लिए किया गया है। इसका अर्थ यह है कि ध्यान के विषय के रूप और गुणों की कल्पना करने से पहले केवल चित्तवृत्ति को उस क्षेत्र की ओर प्रवृत्त करना ही स्थिर मानसिक अवस्था का परिणाम है। ध्यान के विषय के रूप और गुणों का स्मरण 'धारणा' कहलाता है, और जब यह स्थिर हो जाती है, तब ध्यान की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। जब साधक अपने मन को चुने हुए विषय पर स्थिर कर देता है और मन पूर्णतः उसी में एकाग्र हो जाता है, तब उसे ध्यान कहा जाता है।¹⁴ बीच-बीच में उत्पन्न होने वाली अन्य सभी चित्तवृत्तियों का लोप ही ध्यान है। भावनात्मक अभिव्यक्ति का मूल स्रोत ईश्वर हैं। मनुष्य एक क्षण भावुक हो सकता है, अगले क्षण हठी, किसी समय लोभी, किसी समय उदार और किसी समय परोपकारी। यह सब ईश्वरीय कृपा से होता है। परमपिता परमेश्वर उस ध्यान का स्वरूप बताते हैं जो संसार-बन्धन का नाश करता है। वही संसाररूपी समस्त रोगों की एकमात्र औषधि है। वे ऊर्ध्वगामी आध्यात्मिक शक्ति और दिव्य दृष्टि से संपन्न महान योगियों के भी परमपिता हैं। वे विश्वरूप और महेश्वर हैं। वे सत्य और ऋत के मूर्त स्वरूप, परब्रह्म और परमात्मा हैं। श्रद्धापूर्वक उनका चिंतन करने से मनुष्य अपनी बुद्धि के प्रकाश को प्रकाशित करता है और निश्चयपूर्वक जान लेता है कि परब्रह्म संपूर्ण सृष्टि के कल्याणकर्ता हैं। जो साधक इस ध्यान को धारण करता है, वह इसी संसार में मुक्ति प्राप्त करता है। यही जीवन का सार है, जो परमपिता परमेश्वर द्वारा प्रदत्त है। योग का महत्व राजनीतिक क्षेत्र में भी है। जैसे-जैसे मनुष्य में विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास हुआ, वैसे-वैसे ऐसे प्रशासनिक तंत्र विकसित हुए जिन्होंने सामाजिक आधारों पर निर्भर परिणामों की जिम्मेदारी संभाली। समाज के भीतर पारिवारिक जीवन को नियंत्रित करने वाले नियमों के माध्यम से सामाजिक रूप से उपयोगी संतुलन का क्रमिक विकास हुआ। प्राचीन काल में राजा, शासक और प्रजा के बीच उत्पन्न होने वाले संघर्षों पर विचार करने के पश्चात् निर्णय लेने से पहले ध्यानमग्न अवस्था में चिंतन करते थे। इससे वे उचित निर्णय लेने में सक्षम होते थे। जब कोई व्यक्ति नैतिक धर्म का पालन करते हुए राज्य-शासन की जिम्मेदारी निभाता है, तब योग-पद्धति समाज-सेवा का माध्यम बन जाती है। योगिक मूल्यों से युक्त प्रजा दिव्य सिद्धांतों का पालन करते हुए अपने निर्णय प्रस्तुत करती थी। इसके विपरीत यदि राजा स्वयं भ्रष्ट हो जाता था, तो प्रजा उसका विरोध करती थी और अंततः उसका पतन निश्चित हो जाता था। एक कुशल प्रशासक योग-अनुशासन के माध्यम से नीति के मार्ग का अनुसरण करता है।¹⁵ यही एक सच्चे शासक और प्रजापालक का गुण है। प्रजा के कल्याण की रक्षा करना शासक के सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्यों में से एक माना जाता है। जनता को स्वास्थ्य, रोजगार, शिक्षा, न्याय तथा अन्य आवश्यक सुविधाओं की आवश्यकता होती है। जब इन आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति होती है, तब अनुशासित अभ्यास और तपस्या के माध्यम से व्यक्ति का आचरण संतुलित हो जाता है। व्याकरणिक दृष्टि से योग दर्शन में विविधता में एकता का सिद्धांत प्रस्तुत करती है। आज अंतरराष्ट्रीय योग दिवस पूरे विश्व में मनाया जाता है। सामान्य नागरिक तक सभी इससे लाभान्वित होते हैं। योग-चिकित्सा के प्रति जागरूकता वास्तव में बढ़ी है।

निष्कर्ष

व्यक्ति के लिए अहिंसा ('अहिंसा') एक व्यावहारिक तथा सामाजिक सिद्धांत है। विशेष रूप से नैतिक जीवन जीने वाले व्यक्तियों के लिए इसका अत्यधिक महत्व है। जो कला एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीना सिखाती है, उसका परिणाम अहिंसा है। जैसे-जैसे सामाजिक संबंधों के माध्यम से मानव विकास होता है, वैसे-वैसे सामाजिक आचरण में अहिंसा का महत्व बढ़ता जाता है। अनेक लोग इसका विरोध करते हैं और राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसकी व्यावहारिकता को चुनौती देते हैं। ऐतिहासिक अनुसंधान भी मनुष्य को व्यावहारिक जीवन-पद्धति अपनाने के लिए प्रेरित करता है। यह समाज का एक पक्ष है और इसे समकालीन जीवन तथा विश्व की ऐसी उपलब्धि माना जा सकता है जिसे केवल योग के माध्यम से ही मापा जा सकता है। समाज के बिना मानव विकास संभव नहीं है। यही मूल्य जीवन के आधार बनते हैं। ऐसे अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्य हैं जिनका पालन प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए। विवाह संस्कार, अंत्येष्टि संस्कार, जन्म संस्कार तथा अन्य परंपराएँ समाज और व्यक्ति की पारस्परिक निर्भरता को प्रदर्शित करती हैं। समाज और व्यक्ति एक-दूसरे पर आश्रित हैं। मनुष्य समाज में रहकर अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति करता है और अपने अहंकार को संतुष्ट करता है। वैचारिक कल्याण की भावना से समाज का संगठन करना तथा अष्टांग योग के मार्ग के अनुसार व्यावहारिक जीवन का मूल्यांकन करना व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हितकारी है। ऐसा आचरण परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण का सर्वोत्तम मार्ग है। संस्कृति व्यक्ति के जीवन-यापन की शैली है। जिस प्रकार क्रियायोग शारीरिक स्फूर्ति को बढ़ाता है, उसी प्रकार वह मानव विकास के लिए प्रेरणा का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी है। प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है। इसी प्रकार योग-अनुशासन में क्रियायोग सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप शारीरिक शुद्धि को आवश्यक मानता है। एक दार्शनिक इन नैतिक मूल्यों की विस्तृत व्याख्या कर सकता है क्योंकि नीतिशास्त्र दर्शन की एक महत्वपूर्ण शाखा है। नीतिशास्त्र और नैतिकता के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दैविक मूल्यों के साथ-साथ अधिदैविक मूल्य का जीवन में बहुत ही अधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। इनमें आर्थिक, नैतिक, सामाजिक, शैक्षिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय, वैश्विक तथा इसी प्रकार के अन्य मूल्य सम्मिलित हैं, जिन्हें नैतिक मूल्यों के रूप में समझा जा सकता है।

सन्दर्भ

- [1]. आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, वेद और उसकी वैज्ञानिकता भारतीय मनीषा के परिप्रेक्ष्य में, श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन, केन्द्र गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, प्रथम सन् 1990 पृष्ठ 75
- [2]. शिवराज आचार्य: कौण्डिन्यायनः, मनुस्मृतिः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण प्रथम 2007, पृष्ठ 81
- [3]. चन्द्रधन शर्मा, भारतीय दर्शन, आलोचना और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1995, पृष्ठ 161-162
- [4]. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पातंजलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृष्ठ 39-40
- [5]. प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002, पृष्ठ 272